ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 178-179**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

गीता के पात्र एवं परिस्थिति के दृष्टिकोण से भक्ति का विनियोग

डॉ0 कौशलेन्द्र मिश्रा
असिस्टेन्ट प्रोफसर, हिन्दी विभाग, बी.बी.एम.बी.जी. कन्या महाविद्यालय, बिहटा, पटना (बिहार) भारत

Received-15.05.2025, Revised-22.05.2025, Accepted-27.05.2025 E-mail : aaryvart2013@gmail.com

सारांशः गीता में प्रधानतः दो ही पात्र भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन हैं। दोनों युद्ध–भूमि में है। एक ओर पाण्डवों की विशाल सेना है तो दूसरी ओर कौरवों की। अर्जुन के सगे सम्बन्धी, गुरू, मामा मित्र, सभी युद्ध–भूमि में उपस्थित हैं। उन्हें देखकर अर्जुन विषाद के काले अंधकार से घिर जाता है। वह व्याकुल हो उठता है। अर्जुन कम्पायमान होकर डगमगाने लगता है। वह किंकर्तव्य विमूढ़ होकर श्रीकृष्ण से प्रार्थना करता है और मित्रता छोड़कर शिष्यता ग्रहण कर लेता है। वह कहता है, ''हे कृष्ण आप जैसा कहेंगे मैं करूँगा। मेरे भीतरी भावोद्रेक से मेरी रक्षा कीजिए।

कुंजीभूत शब्द– युद्ध–भूमि, काले अंधकार, व्याकुल, कम्पायमान, डगमगाने, किंकर्तव्य विमूढ़, भीतरी भावोद्रेक, सात्विक

मैं आपकी शरण ग्रहण कर रहा हूँ।''

सीवन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपयुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्य जायते।।
गाण्डीव संस्रते हस्तात्वक्यैव परिदह्यते।
न च शक्नोभ्यवस्थातुं भ्रम्रतीव च में मनः।[1]
कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढ़ चेताः।
यच्छेयः स्यान्निश्रिचतं ब्रूहि तन्मे शिष्येतहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम।।[2]

अर्जुन के समक्ष भयंकर परिस्थिति है। उसका हृदय गहन विषाद से भर जाता है। अर्जुन वीर है, संवेदनशील है और उसका हृदय कोमल है। वह सात्विक, सीधा–सच्चा, निश्चल और पवित्र है किन्तु धर्मज्ञ नहीं है। अर्जुन के विषाद ने उसे योगारूढ़ कर दिया। इस विषाद के कारण अर्जुन के मन में भौतिक सुख भोग का आकर्षन विलुप्त हो जाता है। और सत्य के प्रति ग्रहणशील हो जाता है। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों क्षत्रिय हैं। संवाद प्रारंभ होने पर वे गुरू–शिष्य बन जाते हैं। अर्जुन ऋजु है। सच्चे शिष्य की तरह वह जिज्ञासु है। श्रीकृष्ण सच्चे गुरू की तरह अर्जुन को उपदेश तथा आदेश दोनों देते हैं। श्रीकृष्ण जीवन का मार्ग स्पष्ट, सरल और प्रशस्त करनेवाले मार्गदर्शन है। अर्जुन मानव–जीवन का महाप्रश्न है और श्रीकृष्ण उसका महासमाधान।

उक्त परिस्थिति में अर्जुन पलायनवादी बन जाता है। श्रीकृष्ण उससे कहते हैं। किंतू शोक न करने योग्य (भीष्म, द्रोण आदि) लोगों के लिए शोक करता है। किन्तु पण्डित तो न उनके लिए शोक करते, जिनके प्राण चले गये हैं और न उनके लिए जिनके प्राण नहीं गये हैं।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञादांश्रचमाषसे।
गतासूनगतागतासूश्रच नानुशोचन्ति पण्डिताः।।[3]

श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। भागवत धर्म के अनुसार वे अर्जुन को प्रवृतिमार्गी बनने का उपदेश देते हैं। गीता के प्रथम छह अध्याय कर्मयोग की शिक्षा देते हैं।

अनन्य प्रेम का ही दूसरा नाम भक्ति है। युद्ध भूमि की परिस्थिति और अर्जुन की मनः स्थिति गुरू–भक्ति उत्पन्न करती है। भंयकर परिस्थिति और अर्जुन के घोर विषाद को श्रीकृष्ण ने पूरी तरह समझकर उनसे मुक्ति के लिए सम्पूर्ण गीता में भक्ति का विनियोग किया है।[4] ''आचार्य मधुसूदन के मत में गीता के प्रथम छः अध्याय कर्म की शिक्षा देते हैं।[5]'' गीता में तीनों की विशद चर्चा है किन्तु भक्तियोग कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों का पूरक है।

भगवद्गीता का प्रारंभ विषादयोग से होता है। शेष सत्रह अध्याय विषादयोग से उद्भूत हुए हैं। भगवान कृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन का विषाद जिज्ञासा में परिवर्तित हो जाता है और उसके मन में जीवन के महाप्रश्न कौंधने लगते हैं। श्रीकृष्ण ने उसकी ग्रहणशीलता एवं श्रद्धा देखते हुए संवादनशैली में उसे उपदेश देकर ज्ञान की विवेचना द्वारा अज्ञान एवं विषाद का निराकरण तथा ज्ञान एवं आनंद की प्रस्थापना अध्ययन कुशलता पूर्वक की[6]।

अर्जुन के मोह–निरसन के लिए भगवान श्रीकृष्ण संसार की 'आगमापायिनोनित्य' बतलाते हुए आत्मा को अजर अमर बतलाते हैं। आत्मा नित्य और सर्वगत है। अपने सगे सम्बन्धियों के मोह से ग्रस्त अर्जुन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म निश्चित है।

''जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हमें सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय सभी को समान समझकर जीवन संग्राम में जुटा रहना चाहिए।

''सुख दुःख समें कृत्वा लाभालामौ जयाजयौ'' आसक्ति त्यागकर कर्मरत रहने से तथा स्थितप्रज्ञ की तरह व्यवहार करने से मोह का निरसन हो जाता है। अनासक्ति योग के रूप में गीता के दूसरे अध्याय में भक्ति का विनियोग अर्जुन के मोह और विषाद को नष्ट करने तथा उन से उत्पन्न परिस्थिति को दूर करने के लिए किया गया है। तीसरे अध्याय में भी भक्ति का विनियोग निष्काम–कर्म के रूप में किया गया है। निष्काम कर्म से चित्त शुद्ध हो जाता है तथा ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान सच्चिदानन्दन परमात्मा में एकीभाव से स्थित करा देता है। यही ब्राह्मी स्थिति है।

चतुर्थ अध्याय को ज्ञान कर्म सन्यास योग की संज्ञा दी गई है। ज्ञान का अर्थ तत्व ज्ञान, कर्म का अर्थ कर्मयोग तथा सन्यास का अर्थ ज्ञानयोग है। कर्म–सन्यास का अर्थ कर्म करते हुए कर्म से सम्बन्ध न रखना है। अर्जुन की भक्ति को दृढ करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि धर्म की हॉनि होने और अधर्ग की वृद्धि होने पर मैं साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रगट होता हूँ। साधू पुरूषों का उद्वार करने के लिए, दुष्टों का विनाश करने के लिए और धर्म की संस्थापना के लिए मैं युग–युग में प्रकट होता हूँ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[7]

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

''परित्राजाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्मसंस्थनार्थाय संभवाभि युगे युगे।।[8]

इस अध्याय में विश्वास, श्रद्धा, ज्ञान, धैर्यपूर्वक और शांतिपूर्वक कार्य करना, उत्तम भावना, विचार वचन, व्यवहार और सेवा की महत्ता के रूप में भक्ति को विनियोग अर्जुन के विषाद को दूर करने के लिए किया गया है ये गुण ही अर्जुन को विषम परिस्थिति से बाहर निकाल सकते हैं।

पंचम अध्याय में आकांक्षा रहित कर्म करने वाले अद्वेषी व्यक्ति को कर्मयोगी या सन्यासी की संज्ञा दी गई है। ऐसा व्यक्ति संसार–बन्धन (माया बंधन) से सूखपूर्वक मुक्त हो जाता है। कर्मयोग और सन्यास योग दोनों समान हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने इस स्थल पर इन दोनों का विनियोग भक्ति के रूप में किया है। ऐसे भक्त ''सर्वभूते हिते रतोः''[9] ''समदर्शित''[10] ''कामक्रोध विमुक्ताना''[11] के सिद्धान्त अपने जीवन में उतार लेते हैं।

षष्ठ अध्याय में आन्तरिक साधना एवं आन्तरिक विकास क्रम का विशद वर्णन हुआ है। फल की कामना त्यागकर ईश्वरार्पण बुद्धि से काम करनेवाला पुरूष सन्यासी तथा योगी है। ध्यान की साधना कर्म भक्ति और ज्ञान को पूर्णता प्राप्त करने की अद्भुत क्षमता है। आन्तरिक साधना और आन्तरिक विकास का विनियोग भक्ति के रूप में कर अर्जुन अपने विषाद से मुक्त हो सकता है।

अध्याय छह से बारह तक की द्वितीय षट्क भक्तिपरक है। ज्ञानी जिसे निर्गुण निराकार कहते हैं, भक्त उसका परमेश्वर अथवा भगवान के रूप में भक्ति एवं उपासना करते हैं। मायायुक्त परमात्मा को ईश्वर तथा मायायुक्त आत्मा को जीव कहते हैं। करूणानिधान प्रभु आर्त की पुकार तुरंत सुन लेते हैं तथा सहायता करते हैं। भक्त का सच्चा विश्वास सदैव सफल होता है। अनन्य भाव से युक्त भक्त जब निष्काम भाव से भगवान का स्मरण करता है तो उसके योग–क्षेम का भार भगवान स्वयं वहन करते हैं।

''अन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्चुपास्ते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाभ्यहम्।।[12]

यदि व्यक्ति अपने सारे कर्मों को भगवान को अर्पित कर देता है तो वह कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है।

''यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कॉन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।।[13]

इस समर्पण योग का विनियोग अर्जुन के विषाद को दूर करने के लिए किया गया है। विभूति योग में भगवान की अनन्त विभूतियों को बतलाकर कहा गया है कि परमात्मा सृष्टि का मूल कारण है तथा इसके कण–कण में व्याप्त है। सर्वत्र वही एक वासुदेव हैं। अर्जुन के अनुरोध पर भगवान कृष्ण उसे विश्वरूप के दर्शन कराते हैं। इन सबों के माध्यम से अर्जुन के हृदय में भक्ति का विनियोग हुआ है।

सम्पूर्ण गीता में अनेक माध्यमों से अर्जुन के विषाद को दूर करने का प्रयास किया गया है। कभी निष्काम कर्म को कभी भक्ति योग को और कभी ज्ञान योग का विनियोग मोह और विषाद को दूर करने के लिए किया गया है। प्रकारान्तर से पात्र और परिस्थिति के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण गीता में भक्ति का विनियोग किया गया है। इसी के फलस्वरूप अर्जुन का मोह नष्ट हो जाता है और आत्म स्वरूप की स्मृति प्राप्त हो जाती है। परिस्थिति जन्य मोह और विषाद से वह अपने को मुक्त कर पाता है। अर्जुन जब भगवान कृष्ण को अपना गुरू मानकर ''शिष्यों अहं'' कहता है वहीं से भगवान कृष्ण विविध युक्तियों से उसे मोह मुक्त करने का प्रयास करते हैं और वे सफल भी होते हैं। तभी तो अंत में अर्जुन कहता है –

''नष्टो मोहः समृतिर्लब्धा त्वत्प्रासादान्मयाच्युत।
स्थितो•स्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तवा।।[14]

हे अच्युत आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे स्मृति प्राप्त हो गई है। मैं संशय रहित होकर स्थित हूँ।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि गीता में भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण ने ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति चार प्रकार के भक्त, तीन प्रकार के गुण – सात्विक, राजसी, तामसी, राग, विराग सब का विनियोग भक्ति को पुष्ट करने के लिए किया गया है। अर्जुन का मन विषाद से भरा हुआ है, उसे दूर करना श्रीकृष्णा के उपदेशों का मुख्य उद्धेश्य है। अर्जुन का तथा जिस परिस्थिति में जब वह है, उसका पूरा ध्यान श्रीकृष्णा ने रखा है। अर्जुन के सारे भ्रमों को दूर करने के लिए हीं श्रीकृष्ण ने अपने उस रूप को भी दिखलाया है, जिसमें सारे आकाश, पाताल, समुद्र आदि समाहित हैं। परिस्थिति और पात्र को ध्यान में रखकर ही भक्ति के विभिन्न रूपों के विनियोग के कारण ही अन्त में अर्जुन का मोह दूर होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गीता, अध्याय 1, श्लोक 29–30.
2. गीता, अध्याय 2/7.
3. गीता, अध्याय 2/11.
4. गीता, रसामृत पृ0 30.
5. गीता, रसामृत, पृ0 680.
6. गीता, अध्याय 2/27.
7. गीता, अध्याय 2/38.
8. गीता, अध्याय 4/7.
9. गीता, अध्याय 4/8.
10. गीता, अध्याय 5/25.
11. गीता, अध्याय 5/18.
12. गीता, अध्याय 5/26.
13. गीता, अध्याय 5/22.
14. गीता, अध्याय 9/27.

*****